International Journal of Research
Special Issue for Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियां और भारत पर प्रभाव: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. केशरी नन्दन मिश्रा

एसोसिएट प्रोफेसर, दीनदयाल उपाध्याय राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सैदाबाद, इलाहाबाद।, उत्तर प्रदेश, भारत।

ब्रिटिश सरकार ने अपनी आवश्यकताओं और स्वार्थों से प्रेरित होकर ऐसी आर्थिक नीति अपनाई, जिसने 'सोने की चिड़िया' कहे जाने वाले देश को दरिद्रता, बेरोज़गारी, अकाल एवं महामारी के देश के रूप में परिवर्तित कर दिया। ब्रिटिश सरकार के आगमन के साथ ही भारत में उपनिवेशवाद की प्रक्रिया में आर्थिक शोषण के विभिन्न तरीकों को अपनाया जाता है। ब्रिटिश सरकार ने भी अपना औपनिवेशिक हित साधने के लिए अपनी आर्थिक नीति को निम्नलिखित तीन चरणों में विभाजित किया–

वाणिज्यिक चरण (1757–1813)

ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक व्यापारिक कम्पनी के रूप में भारत आई। प्रारम्भ में उसे बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा। एक ओर शक्तिशाली मुगल साम्राज्य का नियन्त्रण था एवं दूसरी ओर अपने देश की सरकार का बदाव था। कम्पनी भारत में जो वस्तुएं खरीदती उनके लिये उसे कीमती धातु देनी पड़ती थी, क्योंकि भारतीय वस्तुओं के बदले देने के लिए इसके पास कुछ नहीं था। स्वाभाविक रूप से वाणिज्यिवाद के इस युग में ब्रिटिश सरकार को इस बात पर आपत्ति थी। फिर कम्पनी भारत में अपनी सेनाएं रखने लगी, किले बनाये एवं युद्ध सामग्रियां खरीदनी शुरू की । इन सब के लिए अत्यधिक मात्रा में धन की जरूरत थी। कम्पनी भारत में कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास जैसे शहरों में चुंगी लगाकर कुछ राजस्व प्राप्त करती थी, किन्तु वह पर्याप्त नहीं था।

औद्योगिक चरण (1813–1860)

आर्थिक नीति के दूसरे चरण में औद्योगिक पूंजीवाद का विकास हुआ। इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप उद्योगपति एवं पूंजीपति वर्ग का विकास हुआ।

धीरे–धीरे इंग्लैण्ड की सरकार पर भी इनका वर्चस्व स्थापित हो गया। इस वर्ग ने अब ब्रिटेन की सरकार पर दबाव डालना शुरू किया कि भारत से ईस्ट इण्डिया कम्पनी का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिया जाये। औद्योगिक वर्ग के दबाव पर वर्ष 1813 में ब्रिटिश सरकार ने भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारिक एकाधिकार को समाप्त कर दिया। इसी के साथ ब्रिटिश उत्पादन के लिये भारतीय बाजार पूर्णरूपेण खुल गया। यह भारतीय हस्तशिल्प उद्योग के लिये एक धक्का था। भारतीय वस्तुओं पर बड़ी मात्रा में चुंगी लगा दी गई। भारतीय सूती वस्त्र पर 30 प्रतिशत से 70 प्रतिशत तक चुंगी लगाई गई। भारतीय चीनी पर उसकी कीमत से तिगुनी चुंगी लगाई गई। वर्ष 1824 में कुछ वस्तुओं पर 400 प्रतिशत चुंगी लगा दी गई। इस प्रकार इस चरण में परम्परागत हस्तशिल्प उद्योग को ध्वस्त कर औद्योगीकरण को बढ़ावा दिया गया।

वित्तीय पूंजीवाद का चरण (1860–1947)

अन्य यूरोपीय देशों में भी औद्योगिक क्रान्ति के प्रसार होने ब्रिटेन की अन्य देशों से प्रतिस्पर्द्धा होने लगी। इस अवस्था के दौरान संसार में ब्रिटेन की स्थिति को प्रतिद्वन्दी पूंजीवादी देशों द्वारा लगातार चुनौती दी गई। भारत पर नियन्त्रण दृढ़ करने के लिए अब ब्रिटेन ने सशक्त प्रयत्न किये। उदार साम्राज्यवादी नीतियां अब प्रतिक्रियावादी समाजवादी नीतियों में बदली गईं। यह लिटन, डफरीन, लैन्सडाउन तथा कर्जन के वायसराय काल में प्रतिबिम्बित हुई। प्रतिद्वन्द्वियों को बाहर रखने के लिए ब्रिटिश पूंजी को भारत में आकृष्ट करने के लिए तथा उसे सुरक्षा प्रदान करने के लिए भारत में औपनिवेशिक शासन मजबूत करना आवश्यक था। वर्ष 1850 के पश्चात ब्रिटिश पूंजी की एक बहुत बड़ी रकम भारत में रेलवे, भारत सरकार के ऋण, व्यापार व कुछ हद तक बगान, कोयला खान, जूट कारखाने, जहाजरानी तथा बैंकिंग में लगाई गई। इस काल में ब्रिटिश सत्ता को भारत से बाहर प्रसार भी भारतीय स्रोतों एवं सैन्य शक्ति का प्रयोग किया गया। वर्ष 1904 में भारतीय उत्पादन का 52 प्रतिशत सैनिक मदों पर खर्च किया जाने लगा। उसी तरह ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता को भारत के कोने–कोने में प्रसारित करने के लिए रेलवे के प्रसार पर

विशेष बल दिया गया। वित्तीय पूंजीवाद के इस चरण में शोषण की पराकाष्ठा के कारण ब्रिटेन को भारत की सत्ता हाथ से गवानी पड़ी।

विभिन्न आर्थिक नीतियां

ब्रिटेन ने भारत में अपना औपनिवेशिक हित साधने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रकार की आर्थिक नीतियों को लागू किया, जिनका वर्णन निम्न है–

कृषि क्षेत्र में स्थायी बन्दोबस्त स्थायी बन्दोबस्त को कॉर्नवालिस ने 22 मई, 1793 को बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में लागू किया। इस व्यवस्था को जागीरदारी, इस्तमरारी, मालुगजारी तथा बीस्वेदारी आदि नाम से भी जाना जाता है। वस्तुतः 1784 ई0 के पिट्स इण्डिया ऐक्ट में कम्पनी की भूमि के स्थायी प्रबन्धन की सलाह दी गई थी। इसी दिशा में स्थायी बन्दोबस्त एक महत्वपूर्ण कदम था। कॉर्नवालिस के समक्ष प्रश्न यह था कि जमीदार को कर–संग्रहकर्ता माना जायं अथवा भू–स्वमी को? इस विषय में जॉन शोर तथा जेम्स ग्राण्ट के विचार परस्पर विरोधी थे। जॉन शोर जमींदारों को संग्रहकर्ता बनाने के पक्ष में था वहीं जेम्स ग्राण्ट भू–स्वामी को। कॉर्नवालिस ने शोर के विचारों का समर्थन किया और उसके अनुरूप 1790 ई0 में 10–वर्षीय लगान व्यवस्था लागू की, जिसे 1793 ई0 में स्थायी बना दिया गया। इस प्रकार स्थायी बन्दोबस्त की शुरूआत हुई। इस नई भू–राजस्व व्यवस्था ने जमींदारों को जमीन का मालिक बना दिया। जमीन पर उनका स्वामित्व पैतृक हो गया। अब किसान मात्र रैयत के रूप में जमीदारों पर आश्रित हो गये। किसानों के भूमि–सम्बन्धी एवं अन्य पैतृक अधिकार समाप्त कर दिय गये। जमीदारों के लिये यह आवश्यक बना दिया गया कि वे निश्चित अवधि के भीतर तय किये गये लगान का 10/11 हिस्सा कम्पनी के कोष में जमा करवाएं और 1/11 भाग लगान–वसूली में होने वाले खर्च के लिये अपने पास रख ले। 1793 ई0 में रेग्युलेशन ऐक्ट के तहत एक **सूर्यास्त कानून** पारित किया गया, जिसके अनुसार अगर निश्चित तिथि की शाम तक जमींदार भू–राजस्व चुकता नहीं करता है, तो सम्बन्धित जमींदारी नीलामी कर दी जाती थी। स्थायी बन्दोबस्त कुल ब्रिटिश भारत के 19 प्रतिशत भाग में लागू थी।

International Journal of Research
Special Issue for Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

रैयतवाड़ी व्यवस्था 1792 ई0 में तमिलनाडु के वाराहमहल में कैप्टन रीड द्वारा इसे 10 वर्षों के लिये लागू किया गया। वर्ष 1820 में मद्रास प्रेसीडेन्सी में थॉमस मुनरों एवं कैप्टन रीड की संस्तुतियों के आधार रैयतवाड़ी व्यवस्था लागू की गई। इस व्यवस्था में रैयत को भू–स्वामी मान लिया गया था। भारत के सबसे बड़े भाग में रैयतवाड़ी व्यवस्था लागू की गई। यह मद्रास, बम्बई तथा कुछ अन्य भागों में लागू थी, जो कुल ब्रिटिश भारत के क्षेत्र का 51 प्रतिशत था। इस भू–राजस्व व्यवस्था के अन्तर्गत किसानों से सीधे 33 प्रतिशत भू–राजस्व वसूला जाता था जो किसान निजी भूमि जोतता था, उसे उसकास स्वामी मान लिया गया बशर्ते वह समय पर भू–राजस्व अदा करता रहे। मालगुजारी न भरने पर किसानों की जमीनें बेच दी जाती थीं।

महालवाड़ी व्यवस्था स्थायी बन्दोबस्त तथा रैयतवाड़ी व्यवस्था की असफलता के बाद महालवाड़ी व्यवस्था का प्रस्ताव सर्वप्रथम वर्ष 1819 हाल्ट मैकेन्जी द्वारा लाया गया। इस प्रस्ताव को वर्ष 1822 के रेग्युलेशन ऐक्ट VII द्वारा कानूनी रूप प्रदान किया गया। भू–राजस्व के सुरक्षार्थ इस व्यवस्था को मुख्यतः गंगा घाटी, मध्य भारत, उत्तर–पश्चिमी प्रान्त तथा पंजाब में लागू किया गया। यह व्यवस्था ब्रिटिश भारत के 30 प्रतिशत भाग पर लागू था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत मालगुजारी का बन्दोबस्त अलग–अलग गांवों के मुखिया या प्रतिनिधि (लम्बरदार) के साथ किया गया। सारे गांव से राजस्व वसूलने का उत्तरदायित्व उसी पर होता था। जहां जमींदार लगान वसूल करते थे वहां लगान भूमि किराए का 30 प्रतिशत था। जहां भूमि ग्राम समाज की सम्मिलित भूमि थीं, वहां कर भूमि किराये का 95 प्रतिशत था।

इस व्यवस्था में भूमि अधिकार तथा लगान देने का अधिकार वंशानुगत माने गये, परन्तु सही अर्थों में भूमि सरकार के पास बन्धक होती थी। वर्ष 1833 में इस व्यवस्था में (विलियम बैण्टिक के काल में) रेग्युलेशन ऐक्ट IX के अन्तर्गत परिवर्तन लाया गया। नई भूमि योजना मार्टिन बर्ड के निदेशन में बनी। भूमि किराये का 66 प्रतिशत भाग राज्य सरकार द्वारा निश्चित किया गया तथा यह व्यवस्था 30 वर्षों के लिए लागू हुई। सहारनपुर के कृषक विद्रोह के पश्चात इसे घटाकर 50 प्रतिशत कर दिया गया।

उद्योग क्षेत्र में

आधुनिक उद्योगों की स्थापना सरकारी नीतियों के परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत के देशी उद्योग विशेषता वस्त्र–उद्योग पूरी तरह नष्ट हो गये। इसके बदले अब भारत में भी मशीन द्वारा समान तैयार करने या औद्योगीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। 19 शताब्दी के मध्य में कपड़े एवं जूट की मिलें बम्बई एवं बंगाल में खुलीं। इस प्रकार जिनिंग एवं प्रेसिंग कारखाने भी भारत में खुले, परन्तु भारत में औद्योगीकरण की वास्तविक प्रक्रिया 1850–70 के मध्य आरम्भ हुई।

सूती वस्त्र उद्योग वर्ष 1853 में कावसजी नानाभाई डावट ने तत्कालीन बम्बई में भड़ौच (अब गुजरात) नामक स्थान पर प्रथम सूती मिल की स्थापना की। अमेरिकी गृहयुद्ध (1861–65) से भारतीय सूती वस्त्र उद्योग को बहुत लाभ पहुंचा, क्योंकि अमेरिका से सूती वस्त्र निर्यात को धक्का लगा। सूती वस्त्र उद्योग के विकास का प्रथम चरण वर्ष 1882 तक पूरा हुआ। इस चरण में नागपुर, शोलापुर, अहमदाबाद आदि क्षेत्रों में सूती वस्त्र उद्योगों का काफी विकास हुआ।

बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं की स्थापना

1780 के दशक में भारत में यूरोपीय व्यापार को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से ब्रिटिश पूंजीपतियों द्वारा बैंकों का विकास किया गया। प्रथम बैंक, बैंक ऑफ इण्डिया था। बंगाल बैंक की चर्चा 1784 ई0 तक होने लगी थी। 1786 ई0 में जनरल बैंक की स्थापना हुई। वर्ष 1806 में बंगाल बैंक का पतन हो गया और इसी जगह बंगाल में ही बैंक ऑफ बंगाल की स्थापना हुई। यह प्रथम प्रेसीडेन्सी बैंक था। वर्ष 1840 में बैंक ऑफ बाम्बे एवं वर्ष 1870 में बैंक ऑफ मद्रास की स्थापना हुई। इलाहाबाद बैंक की स्थापना वर्ष 1865 में तथा इम्पीरियम बैक ऑफ इण्डिया की स्थापना वर्ष 1920 में तीनों प्रेसीडेन्सी बैंको को मिलाकर की गई।

References

- Appleyard, R.T. (Ed.) 1989 The Impact of International Migration on Developing Countries. Organization for Economic Cooperation and Development, Paris.

- Hann A (2011): Inclusive growth? Labour migration and poverty in India , Working Paper No.513, International Institute of Social Studies.
- Deshingkar, P. and Farrington, J. (2009): 'Circular Migration and Multi locational Livelihood Strategies in Rural India', Oxford University Press, New Delhi.
- Bhagat, R.B (2010): 'Internal migration in India: are the underprivileged class migrating more?' Asia-Pacific Population Journal, Vol 25, No 1, pp 27-45.
- Asian Development Outlook 2008: Workers in Asia, http://www.adb.org/Documents/Books/ADO/2008/part020302.asp, accessed on 9/9/2008.
- Census of India 2001. Soft copy, India D-series, Migration Tables. Registrar General and Census commisioner, India.
- Government of India. "Indian Labour Statistics" (various Issues), Labour Bureau, Ministry of Labour, Government of India.